कृषि, संस्कृति और बीज बचाओ आन्दोलन के लिए संघर्ष

10 सितम्बर का दिन हिमालय वासियों के लिए निसन्देह गौरव का दिन है, यह दिन हमें भारत रत्न श्री गोविन्द बल्लभ पन्त के महान कार्यों की याद तो दिलाता ही है साथ ही उनके नाम से पर्यावरण चेतना को सतत विकास के लिए स्थापित गोविन्द बल्लभ पन्त राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान आज आपदाग्रस्त हिमालय के और यहाँ के निवासियों को संकट से बचाने के लिए नई आशा की उम्मीद जगाता है।

बन्धुओं में न खास वक्ता हूँ न प्रवक्ता मैं गाँव का एक छोटा किसान व सामाजिक कार्यकर्ता हूँ, मेरा सौभाग्य रहा है कि 1970 के दशक में सर्वोदय विचार से प्रभावित होकर चिपको आन्दोलन का कार्यकर्ता रहा। एक जमाने में यहाँ के मूल निवासी खेती–पशुपालन व वनाधारित जीवन पद्यति के फलस्वरूप संपन्नता के शिखर पर थे, लेकिन अंग्रेजों की औपनिवेशिक वननीति के फलस्वरूप विपन्नता की तरफ बढते गए। जिसका प्रतिकार समय–समय पर होता रहा, किन्तु यहाँ गाँधोवादी सर्वोदयी कार्यकर्ताओं ने 1970 के दशक के शुरूआत में शराबबंदी आंदोलन के साथ जनता को संगठित करने का प्रयास किया और बाद में जंगल के हकहकूकों को लेकर चिपको आन्दोलन चलाया। चिपको आन्दोलन की शुरूआत आर्थिक आधार पर हुयी थी, तब राजस्व कमाई के लिए सरकार वन विभाग पहाड़ के जंगलों को ठेकेदारों, मालदारों से कटवाते थे और स्थानीय लोग देखते रह जाते थें, आरम्भ में चिपको आन्दोलन की मुख्य माँग वन आधारित लघु कुटीर उद्योग स्थापित कर स्थानीय लोगों को रोजगार दिलाने की रही और ठेकेदारी मालदारी प्रथा समाप्त कर वन श्रमिक सहकारी समितियों एवं वन निगम व संस्थाओं के पर्याप्त वनों का दोहन करने की दिशा में रही, किन्तु 1977 में लवाधार (पिथौरागढ) में एक बड़ा भूस्खलन हुआ जिसके फलस्वरूप मलवे में दबकर स्थानीय नागरिक एवं आईटीबीपी के 45 लोगों की जान चली गयी। इस भूस्खलन का मुख्य कारण उस क्षेत्र के जलागम में बड़ी मात्रा में जंगल कटान सार्बित हुआ।

इसके पश्चात टिहरी गढवाल की हैंवलघाटी में शुरू हुए चिपको आन्दोलन की दिशा एकदम बदल गयी, स्थानीय हकहकूक को कायम रखते हुए जंगल का व्यापारिक कटान पूर्णबंद करने की ओर आगे बढा

यहाँ सबसे पहले 30 मई 1977 तिलाड़ी दिवस पर जोड़ी का डांडा के जंगल में लीसा निकालने के लिए चीड़ के पेड़ों पर लगे बड़े–बड़े घावों पर आन्दोलनकारियों ने गीली मिट्टी भरकर बाहर से बोरी बांधकर मरहम पट्टी लगाकर हरे पेड़ों के प्रति प्रेम जताया। जिससे वन विभाग व लीसा ठेकेदार यहाँ लीसा नहीं निकाल पाया। वन विभाग जंगल की देन लीसा और लकड़ी को व्यापार मानता था, किन्तु आगे अदवाणी के जंगल में जब साल एवं चीड़ के पेड़ों का कटान शुरू हुआ तो यहाँ जोर शोर से चिपको आन्दोलन चलाया गया। यहाँ पर कई बार सीधे पेड़ों पर चिपक कर आंदोलनकारियों ने पेड़ बचाए, यहाँ से चिपको आन्दोलन एक कदम और आगे बढा यहाँ से प्रकृति चेतना का एक अदभुत नारा गूँजा–

"क्या है जंगल के उपकार–मिट्टी, पानी और बयार
मिट्टी, पानी और बयार– जिन्दा रहने के आधार"

इस नारे ने चिपको आन्दोलन को नया दर्शन देकर, वनों की देन लीसा और लकड़ो को व्यापार से हटाकर मिट्टी, पानी और हवा की ओर मोड़ कर चिपको आन्दोलन को दुनिया में मशहूर कर दिया। अदवाणी के बाद बडियारगढ, कांगड़, लासी व खुरेत आदि जंगलों में चिपको आन्दोलन की मांग पूरे हिमालय क्षेत्र में हरे पेड़ो के व्यापारिक कटान पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने पर केंद्रित हो गयी और 1980 के आते आते उत्तर प्रदेश सरकार केन्द्र सरकार को 1000 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में हरे पेड़ो के व्यापारी कटान पर प्रतिबंध लगाना पड़ा जो आज भी जारी है उसके बाद वन विधेयक 1980 बना भारत की नई पर्यावरण नीतियाँ बनी और केन्द्र में वन मंत्रालय के साथ पर्यावरण मंत्रालय भी जुड़ा, आपका यह संस्थान भी बना इसी पर्यावरण जागरूकता के बाद हम लोगो ने चूना पत्थर खनन विरोधी सफल आन्दोलन भी चलाए।

इस आन्दोलन की सफलता के बाद मैं अपने गाँव में पिता जी के साथ खेती करने लगा, तब हरित क्रांति के दौर में कृषि विभाग द्वारा प्रदर्शन के नाम पर मुफ्त में धान गेंहूँ के बीज बाँटे जा रहे थे, साथ में रासायनिक खादें व कीटनाशक भी इसका अनुभव मैने जब अपने हाथों से परखा तो पता चला कि नए बीज पहले वर्ष खूब उपज बढा रहे हैं किन्तु रासार्यानक के दुष्प्रभाव मिट्टी और फसलों पर दिखे किस तरह मिट्टी नशेबाज हो रही है। अगले सीजन में वही बीज बोया खाद नहीं डाली तो उपज गिर गयी और बीमारियाँ आने लगी, मेरे साथ मानष पर मिट्टो, पानी और हवा वाला मंत्र छाया था। प्रकृति को समझने की मैने कोशिश की और अपने घर के बीज बाँटे किन्तु मुझे अपने पिताजी व अन्य बुर्जुगों ने बताया कि जब से नए बीज आए हैं घर के बीज लुप्त होने लगे है। नए बीज तो दो तीन फसलों के बाद उपज नहीं देते हैं, उन्होने कहा सिर्फ पेड़ बचाने से काम नहीं चलेगा पुराने बीज भी बचाने होंगे। मेरा मन जैविक पारंपरिक की समझ बढाने की ओर आगे बढा मुझे याद आया जब मैं छोटा था मेरी माँ अपने मायके से थोड़ा रासायनिक खाद लायी थी, मैंने टमाटर के दो–चार पौधे लगाए और यह सोचकर उनमें सीधे रासायनिक खाद डाल दी कि पौधे जल्दी बढेंगे और खूब टमाटर लगेंगे लेकिन हुआ एकदम उल्टा अगले दिन टमाटर के पौधे सूखे पड़े हैं। रासायनिक खाद के खतरे उस वक्त नहीं समझा अब मेरी समझ में आ गया, हरित क्रांन्ति के अधिक पैदावार देने वाले बीजो के साथ नया सिस्टम जुड़ा था, बीजों के साथ रासायनिक खादें फिर बीमारियाँ और बीमारियों की रोकथाम के लिए दवा के नाम पर कीटनाशक जहर बीजों के साथ खरपतवार आए तो पीछे से खरपतनाशी मुफ्त में प्रदर्शन के नाम पर एक आध बार संसाधन मिले अब वह भी बंद हो गए। देखते ही देखते घर के बीजो की तलाश में दूरस्थ गाँवों की ओर गया जहाँ आधुनिक कृषि विभाग, कृषि वैज्ञानिक नहीं पहुँचा था। वहाँ पारंपरिक बीजों विविधता देखने को मिली, वहा से भूले बिसरे बीजो को एक मुट्ठी पोटली में बाँधकर लाया और अपने खेतों में उगाकर बुर्जुगों को दिखाए वे खुश हुए और मैने वे बीज अन्य किसानो में बाँटन शुरू किए आरम्भ में मैं विविधता युक्त बीजों को एक अभियान या आन्दोलन की तरह चलाता रहा व लोगों को सचेत करता रहा।

इसे एक आन्दोलन का स्वरूप तब मिला जब चिपको आन्दोलन के पुराने साथी धूम सिह नेगी, कुँवर प्रसून, श्रीमती सुदेशा बहिन दयाल भाई व साहब सिंह आदि से चर्चा की तो सबने मिलकर इसे एक व्यापक स्वरूप देकर बीज बचाओ आन्दोलन को आगे बढाया। लेकिन मैं जिस लग्न के साथ बीजों की विविधता ढूँढने में निकला था और आज भी जहाँ जाता हूँ वहाँ से नया कुछ ढूँढ लाता हूँ और सुबह उठकर धरती माता को प्रणाम कर मिट्टी को माथे पर लगाकर पेड़–पौधों के दर्शन करता हूँ, मैने देखा कि लगाए हुए पेड़ पौधों प्रसन्न होकर खूब बढते हैं और फलते है व उनकी ऊर्जा भी मुझे मिलती है।

हम लोगों ने किसानों की बड़ी–बड़ी बैठकें आयोजित कर खेती किसानी में आने वाले संकट के बारे में जागृति लाने का प्रयास किया, लेकिन हमारे सामने चुनौतियाँ यह थी कि हमें सरकारी विभागों व जनप्रतिनिधियों द्वारा विकास विरोधी कहा जाने लगा उसी दौरान पैसे की खेती का लालच देते हुए यहाँ की पारंपरिक बारह किस्म की मिश्रित खेती के स्थान पर सोयाबीन की एकल खेती पर जोर दिया जा रहा था। मंडुआ, झंगोरा का मोटे अनाज कहकर उपहास उड़ाया जाता था, कहा जाता था ये अनाज गंवारों और जानवरों का खाना है, लेकिन हमने इन अनाजों को अपने बुर्जुगों को मुख्य खाने में खाते देखा था। इसलिए वे बड़े स्वस्थ व प्रसन्नचित्त रहते थे, हमने इन अनाजों के संरक्षण पर जोर देते हुए इन्हें पौष्टिक अनाज कहा और अपनी पारंपरिक फसलों के साथ–साथ पारंपरिक भोजन को सम्मान देने के लिए अपने सम्मेलनों में इन से निर्मित व्यंजनों को प्राथमिकता दी और सोयाबीन की एकल खेती के खतरे को समझने का प्रयास किया ।

चिपको आन्दोलन के लोक कवि घनश्य सैलानी ने बीज बचाओ आन्दोलन के लिए मंडुआ–झंगोरा एवं जंगली फल–फूलों के खाद्यान्न पर एक सुन्दर गीत लिखा–

हरचि कख गढवाल कु कोदू और कंडाली
गोल गफ्फा बण्यां रंदा था जैन गढवाली
मोल थां बमोर पक्या डाला झकझोर झक्यां
कना दिन थां तबांरी कुछ भी नि थै दुख बीमारी

पहाड़ का मडुआ झंगोरा ओर कंडाली (बिच्छू घास) कहाँ खो गया है जिसे खाकर यहाँ के लोग स्वस्थ और मजबूत कद कांठी के होते थे, जब यहाँ की फसलों और जंगली फल–फूल व सब्जियाँ खाते थे तो उन्हे दुख तकलीफ व बीमारियाँ नहीं लगती थी। इस तरह के गीतो को जब हम गाँव–गाँव में गाते थे तो खासकर महिलाऐं भावात्मक रूप से तुरंत समझती थी और अपनी पारंपरिक फसलों और खनपान पर ध्यान देती थी। हैंवलघाटी शुरू हुए इस आन्दोलन को सामान्य यात्रा और पद यात्राओं के माध्यम गाँव–गाँव पहुँचाने प्रयास किए गए,सोयाबीन की एकल खेती को जब सरकार द्वारा बारहनाजा व मंडुआ, झंगोरा के स्थान पर लाया जाने लगा तो इसका खतरा हमने पहचान लिया क्योंकि सोयाबीन तो सिर्फ बाजार के लिए था। सोयाबीन बाजार बेचो और अपने खाने के लिए बाजार से अनाज खरीद कर लाओ, पहाड़ की एक कहावत है अपणा आलू बाजार बेचा बिराण आलू भेपड़ा भेचा इससे हमने नसीहत ली आर सोयाबनी के प्रति भी किसानों को जागरूक किया। क्योकि हमारे पारंपरिक अनाजों से दाना अपने खाने के लिए मिलता है और फसलों के अवशेष से पालतू पशुओं के लिए चारा मिल जाता है, हमारी फसलें–खेती और पशुपालन का रिश्ता मजबूत करती है, जो जैविक प्राकृतिक खेती का आधार है। इसमें हम काफी सफल रहे। बीज बचाओ आन्दोलन के प्रचार–प्रसार के लिए उत्तराखण्ड के एक क्षेत्र आराकोट उत्तरकाशी (हिमाचल सीमा) से अरकोट पिथौरागढ (नेपाल सीमा) तक पारंपरिक खोज पदयात्रा 1998–99 में युवा साथियों एवं दिल्ली के साथियों के साथ दा चरणों में लगभग 500 किलोमीटर (50 दिन) में गाँव–गाँव होते हुए की, इससे पूर्व 1974 में मैने अस्कोट आराकोट पदयात्रा में हिस्सा लिया था। जिसमें पदमभूषण श्री सुन्दरलाल बहुगुणा, कुवर प्रसून, शेखर पाठक व प्रताप शिखर आदि मशहूर हस्तियां शामिल थे। इस पदयात्रा के बाद ही मैने सर्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, 2021 में अस्कोट, आराकोट भी आयोजित की गयी, गाँव–गाँव की सामान्य यात्रा एवं पारंपरिक बीजों की खोज यात्रा से यह उपलब्धि हासिल हुयी कि छोटा सा उत्तराखण्ड जैव विविधता के मामले में देश के कई बड़े राज्यों के मुकाबले जैव विविधता के या बीजों धान, 30 गेहूँ, 04 जौ, मंडुआ 12, झंगोरा 08, कौणी 04, ज्वार 2, बाजरा, ओगल, मक्का 08, रामदाना, राजमा 220, नौरंगी 25, भट्ट पारंपरिक सोयाबीन, गहथ 03, दर्जनो प्रजातियो का हमने डॉक्यूमेंटेशन किया है और अभी इसे और व्यवस्थित करने की योजना है।

कई समाप्ति की ओर मिलेट चीगा आदि का भी संवर्धन किया जा रहा है, अभी लगभग 400 प्रजातियां खेतो एवं कुछ स्वतः खेतो के आसपास एवं जंगल में उगने वाली प्रजातियों का जिन्दा बीज बैंक हर साल नया किया जाता है। इस तरह सिर्फ उत्तराखण्ड में बीज बचाओं आन्दोलन का सन्देश नहीं पहुँचाया गया बल्कि देश के अन्य राज्यों हिमाचल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखण्ड, छत्तीसगढ, तमिलनाडू, राजस्थान, उड़ीसा व कर्नाटक आदि तक बीज बचाओ आन्दोलन का संदेश व कई किसानों को सभा सम्मेलनो के पर्याप्त बीज उपलब्ध कराने में हम सफल रहे। विदेशों से भो कई निमंत्रण मिले जिनमे दक्षिण अफ्रीका में आईयूसीएन द्वारा आयोजित वर्ल्ड पार्क कांग्रेस मलेशिया में पेस्टीसाइड

एक्शन नेटवर्क की कार्यशालाऐं ईईएल के देशों का सममेलन बेल्जियम, यूरोपियन इंवारयमेंट नेटवर्क जर्मनी व नेपाल आदि तक।

बीज बचाओं आन्दोलन की यह बड़ी उपलब्धियां है कि उत्तराखण्ड में देश का पहला जैविक बोर्ड (UOCB) बना, समय–समय पर राज्य की कृषि नीति एवं किसान आयोग एवं केन्द्रीय किसान कल्याण मंत्रालय को अने क सुझााव दिए गए। हमारे लिए गौरव की बात है कि हम भारत में जैविक/प्राकृतिक खेती की जागरूकता के लिए देश भर के किसानों व संघटनों के साथ अग्रिम पंक्ति पर है। जिस मंडुआ , झंगोरा व अन्य अनाजों को मोटा अनाज कहकर पिछड़ापन की खेती कहा जाता था, उसे भारत सरकार ने पौष्टिक अनाज का गजट नैरोफिकेशन किया। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनेक देशों में 2023 को बाजरा वर्ष के रूप में मनाया और अब भारत सरकार इन्हें भी उच्च कहती है।

हमें इस बात से प्रसन्नता है कि यूएसए के कई विश्व विद्यालयों के छात्रों व उनके प्रोफेसरों के समूह 2018–2019 में बीज बचाओ आन्दोलन व चिपको आन्दोलन से सीखने के लिए जड़धार गाँव आए। बीज बचाओ आन्दोलन विदेशी विश्व विद्यालयों अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण शिक्षण संस्थान के छात्रों व प्रोफेसरों के लिए पारंपरिक ज्ञान, जैविक, प्राकृतिक खेती एवं खानपान का प्रशिक्षण स्थल भी बना, 2018–2019–2020 में School for International Training Jaipur के माध्यम से तीन समूह यहाँ जड़धार गाँव आए, जिनमें USA के विश्व विद्यालयों से अधिक थे, जिनमें Loyola Marymount University, Aneri Kinariwalla International Business University, Pennsyl vania Anerika, International School आदि।

इस वर्ष की शुरूआत में दक्षिण अमेकिा से University of Montara से भी Prof Keth Willim के साथ छात्रों का एक समूह बीज बचाओ आन्दोलन का पाठ सीखने के लिए यहाँ आया। जापान की Ehime University की एक Research Unit Glocal Area Studies Prof Shinya Ishizaka बीज बचाओं आन्दोलन के कार्यों पर शोध कर रहे है। आश्चर्य की बात यह है कि हमारे विश्व विद्यालयों के लिए यह कार्य महत्वपूर्ण नहीं है।

आज हम इस दुनिया में जी रहे हैं जिस मिट्टी ने हमें जिन्दा रहने के लिए खुराक मिल रही है, वही बीमार है अब मिट्टी ही बीमार है तो फिर हम कैसे स्वस्थ होंगे। वर्तमान में बीज बचाओं आन्दोलन पहाड़ों में खेती पर तीन खतरे देखता है आन्दोलन में नारा दिया है–

"खेती पर किसकी मार जंगली जानवर मौसम सरकार।"

किसान हाड़ तोड़ कर मेहनत कर खेती करते हैं किन्तु दिन के समय बंदरों की टोलियां बुआई के बाद बीज अंकुरण से लेकर पौध बड़े होने और फलियां बालियां सब चौपट कर रहे है और रात को सुअरों की टोलियां फसलों को तहश नहश कर जाती है। बदलती जलवायु और मौसम के फलस्वरूप अब कोई भी ऋतु और मौसम अपने चक्र में नहीं आ रहा है, जब बारिश की जरूरत होती है तो तब सूखा पड़ जाता है, बेमौसम अतिवृष्टि फसलों को नष्ट कर देती है। जिससे किसान बड़े दुखी है सरकार किसानों को सीधे नहीं मारती है न सरकार का उद्देश्य लोगों को मारना है, किन्तु सरकार की ऐसी नीतियां होनी चाहिए जो किसानों की सतत टिकाऊ खेती की रक्षा करे। बीज खाद एवं अन्य कृषि व्यापार में लगी कम्पनियों का मुनाफा बढाने वाले सरकारी कार्यक्रम बंद होने चाहिए।